# बड़े कैनवास पर बारीक़ चित्रण

कहानी संग्रह *खिड़कियों से झाँकती आँखें* के साथ सुधा ओम ढींगरा ने अपने लंबे लेखकीय सफ़र में एक और पंख जोड़ा है। इस संग्रह की हर कहानी मानवीय संवेदनाओं की खुली किताब के रूप में उभरकर सामने आती है। अलग-अलग सामाजिक रंगों की पहचान कराती ये कहानियाँ कई अच्छे और बुरे सामाजिक पहलुओं से भी परिचित कराती हैं। दो देशों—भारत और अमेरिका की सभ्यताओं का जितनी सूक्ष्मता से आकलन उनके द्वारा किया गया है, वह सराहनीय है। संग्रह की शीर्षक कहानी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' अपने आप में बेजोड़ है। इस कहानी में लेखिका ने एक डॉक्टर के द्वंद्व को ख़ूबसूरती के साथ शब्द दिए हैं। भारत के बाहर, ख़ास तौर से अमेरिका में फ़ॉरेन डॉक्टरों के साथ कैसा बर्ताव होता है, इसका जीता-जागता उदाहरण इस कहानी के मुख्य पात्र डॉ. सागर मलिक हैं। ग़रीब माँ-बाप कितने उत्साह से तकलीफ़ों में जीकर अपने बच्चों को पढ़ाते हैं। अमेरिका आने का उत्साह चरम पर होता है, लेकिन एक अलग माहौल में विदेश का नशा किस तरह अंदर ही अंदर प्रताड़ित करता है, इसका बख़ूबी चित्रण किया गया है। साथ ही बुजुर्गों की मानसिकता भी सूक्ष्मता से उभरी है। किसी से बात करने को तरसती आँखें, एकाकीपन की भयावहता और पश्चिमी संस्कृति से जुड़ी मार्मिक संवेदनाओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है यह कहानी। भाषा का प्रवाह बेहद सहज है—"यंग मैन, इन आँखों से डरने की ज़रूरत नहीं, इनको दोस्ती का चश्मा चाहिए, पहना दो, चिपकना बंद कर देंगी।" विश्व के हर कोने में कहीं न कहीं ऐसे चरित्र देखने को मिलते हैं, जो इस कहानी को सार्वभौमिक बनाते हैं।

'वसूली' कहानी पारिवारिक और निजी स्वार्थों में घिरे सदस्यों की दास्तान है। पैसा, ज़मीन-जायदाद, ये ऐसे शब्द हैं, जो सदा ही रिश्तों में कड़वाहट घोलते रहते हैं। इन शब्दों की धार से मुनष्य लाचार-सा हो जाता है, तब किसी भी रिश्ते के कोई मायने नहीं रहते। इतिहास गवाह है कि इन शब्दों ने कितना ख़ून बहाया, कितने अपने, पराये हुए और कितनों ने इनकी बदौलत अपने ज़मीर की हत्या कर दी। तब बूढ़े होते माँ-बाप हों या बचपन में साथ खेले भाई-बहन, कोई अपनापन नहीं रहता, रहता है तो सिर्फ़ 'मैं' और 'मेरा'। इसी कटु सच्चाई का बयान करती है कहानी 'वसूली'। बेहद सतर्कता से उठाई गई समस्या को एक ख़ूबसूरत अंत देती कहानी बहुत कुछ कह जाती है। विदेशी लोगों और इनके आपसी संबंधों के बारे में एक आम भारतीय की धारणा सामान्यतः पूर्वाग्रह से ग्रस्त होती है। इनसे कोई रिश्ता बन जाए तो कभी मन से स्वीकार नहीं कर पाते। 'एक ग़लत कदम' कहानी इस धारणा का गहराई से विवेचन करने के साथ कई ऐसी ग्रंथियों को खोलती है, जो सहज ही पाठक

के मन को प्रभावित कर जाती हैं। समय के साथ आगे तो बढ़ रहे हैं हम, लेकिन हमारी सोच आज भी बहुत पीछे है। आज भी हमारे लिए देश, धर्म, रंग भेद, जाति भेद की लकीरें उतनी ही गहरी हैं। हम स्वीकार ही नहीं कर पाते उन लोगों को, जो सामाजिक मूल्यों में हमसे कहीं आगे हैं, पर चूँकि वे हमारे देश के नहीं हैं, हमारी जाति के नहीं हैं, इसीलिए वे कितने भी अच्छे क्यों न हों, हमारे लिए बुरे ही हैं। एक गोरी बहू का घर में स्वागत कभी नहीं होता।

'ऐसा भी होता है' पत्र शैली में लिखी हुई बेहद तल्ख़ कहानी है, जो संवेदनाओं और अनुभूतियों का ऐसा दस्तावेज़ है, जहाँ पारिवारिक दोहरे मूल्यों में बँटी सोच को चित्रित किया गया है। बेटियों से भेदभाव और कोई नहीं, बल्कि स्वयं माँ भी करती है, फिर औरों की तो बात ही क्या की जाए। दलजीत कौर की चिट्ठी सिर्फ़ चिट्ठी नहीं, वह बेटी और बेटे के साथ फ़र्क़ का कच्चा चिट्ठा है, जो तमाम सवाल खड़े करता है। हमारे सामाजिक दायरों में आज भी बदलाव के संकेत कम ही दिखाई देते हैं। सामाजिक संकीर्णताओं में घिरे हम कभी उनसे मुक्ति की कोशिश भी नहीं करते। निश्चित ही पंजाबी मिट्टी की महक से सराबोर यह कहानी एक आम भारतीय परिवार की संकुचित सोच को हमारे सामने लाती है।

'कास्मिक की कस्टडी' कहानी में लेखिका ने माँ की ममता के साथ एकाकीपन की वेदना को अपने कौशल से बहुत रोचक बना दिया है। शुरू से अंत तक सस्पेंस ही रहता है कि कॉस्मिक है कौन? आख़िर में रहस्योद्घाटन होता है। सशक्त भाषा शैली से सुधा ने इसका ताना-बाना बुना है। परिवार के सदस्यों में मनमुटाव होता है, लेकिन भावनाएँ तो फिर भी ज़िंदा रहती हैं। अपनत्व तो फिर भी होता ही है। अहसास भर होने की देर होती है। 'अँधेरा उजाला' एक मर्मस्पर्शी कहानी है, जो बदलते परिदृश्य में सामाजिक विद्रूपताओं पर करारी चोट करती है। उच्च वर्ग व निम्न वर्ग की सोच को कुरेदती समस्याएँ आज भी हमारी मानसिकता का एक अंग हैं। ऊँच-नीच की भावना में हमने 'दलित' जैसे शब्दों को रच लिया है, काग़ज़ पर भी और अपने मनोमस्तिष्क पर भी। अंग्रेज़ों से आज़ाद हुए बरसों बीत गए, लेकिन क्या हम सच में ऐसे संकीर्ण ख़्यालों से आज़ाद हो पाए हैं। ऐसे कई सवाल उठाए जाते हैं, जो कहानी को यथार्थ के निकट ले जाने की कोशिश करते हैं।

'एक नई दिशा' कहानी में नई सोच को आयाम देना लेखिका का मुख्य लक्ष्य प्रतीत होता है, जो एक कामकाजी पेशेवर से क्या रिश्ता होना चाहिए, उसकी सीमारेखा खींचते हुए अनावश्यक प्रतिक्रियाओं से स्वयं को बचाने की पुरज़ोर कोशिश का लेखा-जोखा है। इस बात पर भी प्रकाश डालने की कोशिश है कि आगे बढ़ती महिला, प्रगति करती महिला, अपने पैरों को मज़बूत ज़मीन देती महिला, न सिर्फ़ पुरुषों का सामना करती है, बल्कि महिलाओं की संकुचित मानसिकता से भी लड़ती है। महिला भी महिला की दुश्मन हो जाती है तब, जब उसकी अपनी दमित चाहतें और इच्छाएँ उभर कर अन्य महिलाओं का रास्ता रोक देती हैं। फिर चाहे वह मौखिक हो, छुपकर हो या फिर सामने आकर, आगे बढ़ती महिला की टाँग ज़रूर खींची जाती है। इन चौतरफ़ा हमलों से लड़कर ही जाँबाज़ महिलाएँ अपना रास्ता बना पाती हैं।

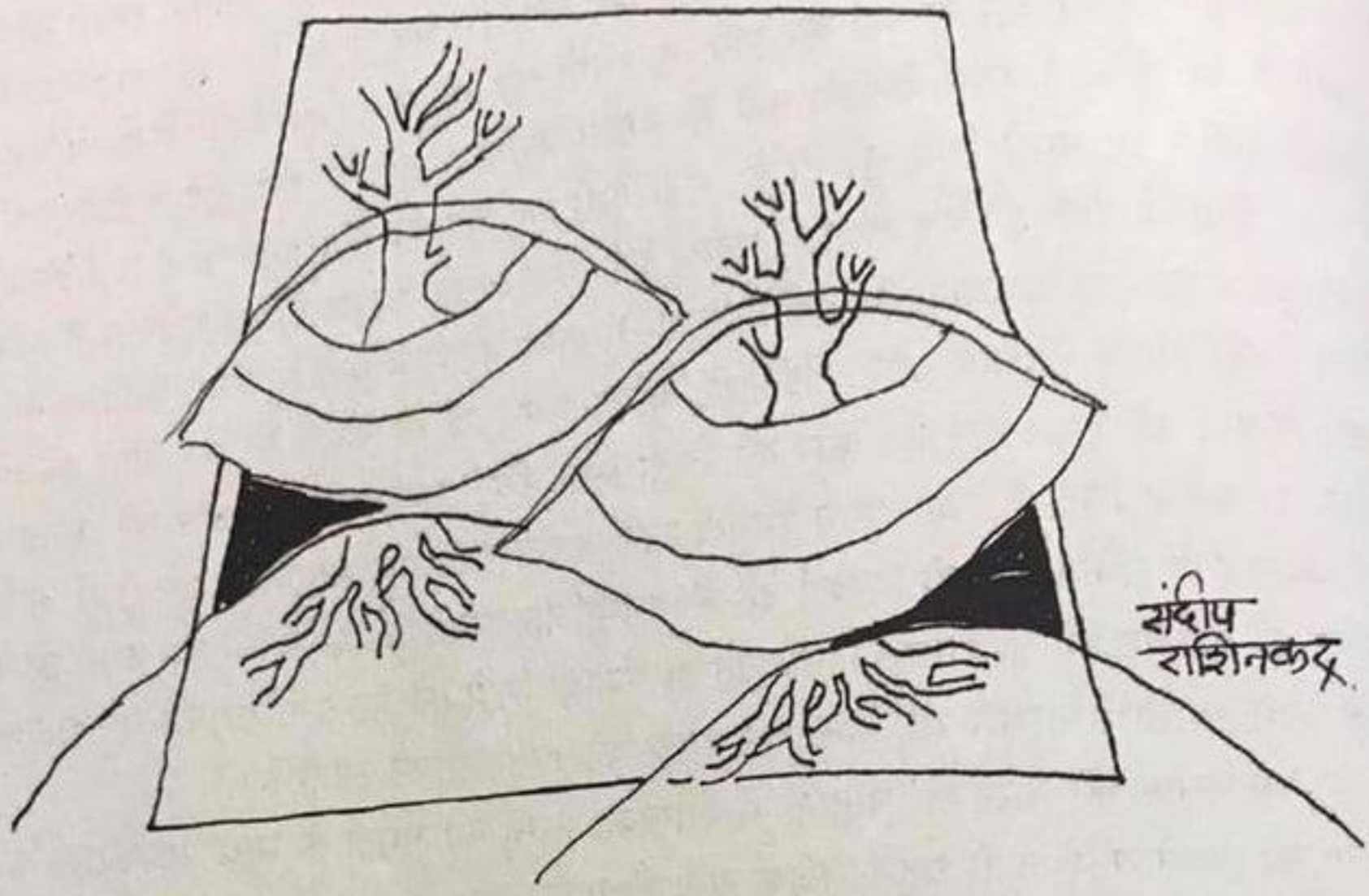


स्त्री के चहुँमुखी संघर्षों का बयान करती सुधा की ये कहानियाँ अपने कथ्य और शिल्प के साथ पूरा न्याय करती हैं। अनूठे भाषाई प्रयोग कहानियों की पठनीयता को एक अलग ही दिशा देते हैं। नारी चेतना के समग्र स्वर के साथ आवाज़ उठाती ये कहानियाँ भारतीय और अमेरिकी परिवेश को तो सामने लाती ही हैं, साथ ही उन सार्वभौमिक मनोसंवेदनाओं का भी ज़िक्र करती हैं, जिनमें काल, देश की सीमाओं से परे एक आम आदमी की आम सोच को नया आयाम मिलता है। सरल और सहज भाषा ने इन कहानियों की संप्रेषणीयता को मज़बूत किया है, साथ ही कथा तंतुओं की मज़बूती ने भी इनको सशक्त बनाया है। कहानियों के शीर्षक आकर्षक और पढ़ने की ललक को बढ़ाने वाले हैं। कई बार कथाकार के साथ यह दुविधा हो जाती है कि कहानी के अनुरूप शीर्षक नहीं मिल पाता, जो मिलता है, वह कथ्य के साथ न्याय नहीं कर पाता, लेकिन सुधा की क़लम अपनी चतुराई से वे शब्द ढूँढ़ ही लेती है, जो कहानी के सार को अपने शीर्षक में समाहित कर लें।

***खिड़कियों से झाँकती आँखें*** (कहानी-संग्रह): सुधा ओम ढींगरा; शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.); ₹ 150

संपर्क : 1512-17 Anndale Drive, North York, Toronto, ON-M2N2W7; Canada
Ph. 001+647 213 1817

के. श्रीनिवासराव, सचिव द्वारा साहित्य अकादेमी के लिए प्रकाशित तथा विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, E-33 सेक्टर A 5/6, ट्रोनिका सिटी, ग़ाज़ियाबाद-201102 (उ.प्र.) से मुद्रित।
अतिथि संपादक : बलराम